



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(4): 302-308
www.allresearchjournal.com
Received: 11-02-2015
Accepted: 05-03-2015

विजेन्द्र कुमार आर्य
शोधचक्र, संस्कृत विभाग दिल्ली
विश्वविद्यालय

अम्बाकर्त्री में गुणलिङ्ग विवेचन

विजेन्द्र कुमार आर्य

अम्बाकर्त्री वाक्यपदीय में वर्णित बीजरूप व्याकरण दर्शन का सम्यकरूप से उद्घाटन करने वाली टीका है इसके रचयिता पण्डित रघुनाथ शर्मा हैं। रघुनाथ शर्मा ने वाक्यपदीय की कारिकाओं तथा प्राचीन टीकाओं आधार बनाकर अम्बाकर्त्री ग्रन्थ का सृजन किया है। अम्बाकर्त्रीकार अपनी इस अद्भुत रचना में वाक्यपदीय में वर्णित एक एक बिन्दु पर बिशद विवेचन किया है इसी विवेचना के क्रम में वे लिङ्गसमुद्देश में वर्णित गुणलिङ्ग पर विचार व्यक्त करते हैं [1]। वे कहते हैं कि ये वैयाकरणों का मत है इसके विषय में हेलाराज ने कहा है कि वैयाकरणों ने सांख्यों के लिङ्ग सम्बन्धी नियम को स्वीकार कर लिया है [2]। वैयाकरण कहते हैं कि संस्त्यान और प्रसव ही लिङ्ग है। संस्त्यान का अर्थ ह्रास या न्यूनता है और प्रसव का अर्थ वृद्धि है। यह ह्रास और वृद्धि स्त्रीत्वरूप तथा पुंस्वरूप है तथा क्रम से लिङ्ग माने जाने चाहिए। 'संस्त्यान' इस शब्द में 'अपचय' रूप अर्थ में 'स्त्यै' धातु से भाव अर्थ में ड्रट् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में होता है। 'प्रसव' इस शब्द में 'उपचय' रूप अर्थ में सूत् धातु से भाव अर्थ में डुमसुन् प्रत्यय करने पर 'सप्' सकार को पकार आदेश होने पर 'पुमान्' बनता है।

संस्त्यान और प्रसव का पारिभाषिक लिङ्ग कथन

संस्त्यान अर्थात् नाश के प्रति सत्त्व आदि गुणों से युक्त रूप, रस आदि का लय या तिरोभाव अभिप्राय यह है कि सत्त्व, रजस्, तमस् इन गुणों के विकार ही 'अपचय' हैं। जो कि शास्त्र में स्त्रीलिङ्गरूप कहा गया है। लोक में 'स्त्राययेते संघातरूपं प्राप्नुतः शुक्रशोणिते यस्यां सा स्त्री, अथवा स्त्राययेते वृद्धिं प्राप्नुति गर्भं यस्यां सा स्त्री। यहाँ स्तयै शब्दसंघातयोः' धातु से ड्रट् प्रत्यय अधिकरण अर्थ में करके द्वित्वसामर्थ्य से टिलोप एवं 'लोपो व्योर्वलि' से यलोप होकर टित्वान्डीप् है। लिङ्गशास्त्र में पुमान् शब्द 'षू' प्रेरणे धातु से भाव में ष् को 'धत्वादे षः सः' से स् होकर 'डुमसुन्' प्रत्यय करके तत्पश्चात् स् को षकारादेश महाभाष्य की इसी पद्य से करके अपचयरूप प्रसव अर्थ में बनता है [3]।

इसके अतिरिक्त 'पा रक्षणे' धातु से रक्षा अर्थ करने पर पुमान् शब्द सिद्ध होता है तथा लोक में इसकी प्रसिद्धि भी है। परन्तु हम यहाँ सूत् धातु से प्रसव अर्थ कर पुमान् शब्द सिद्ध कर रहे हैं जो लोक में प्रसिद्ध भी नहीं है। यदि 'पा' धातु से रक्षा करता है यह अर्थ निकाल रहे हैं तो यहाँ 'पातेर्डुमसुन्' [4] इस उणादि सूत्र की प्रसिद्धि से 'डुमसुन्' प्रत्यय प्राप्त होता है। सूत् धातु से तो 'डुमसुन्' नहीं ही है। इसलिए 'डुमसुन्' प्रत्यय नहीं होना चाहिए। यद्यपि पा धातु से 'डुमसुन्' प्रसिद्ध तथा उसके शब्दों और अर्थों की भी प्रसिद्धि है और शास्त्र की भी शिष्ट प्रसिद्धि बल से अनुसरण करना चाहिए परन्तु सूत् से भी हम 'डुमसुन्' मान लेंगे क्योंकि शास्त्र में व्युत्पत्ति पक्ष का ही समादर है अन्यथा शास्त्रारम्भ व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए लोक में तो प्रसिद्ध अर्थ का ही ग्रहण करेंगे कि जो सन्तति का पालनकर्ता है वह पुमान् है परन्तु शास्त्र में प्रसव अथवा प्रवृत्ति का आविर्भाव कहकर पुमान् अर्थात् पुंस्वरूप लिङ्ग कहेंगे। [5]

यद्यपि आविर्भाव और तिरोभाव लौकिक ही है और लोक प्रसिद्ध अर्थ का ही शास्त्र में स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग रूप में ग्रहण करते हैं, परन्तु अचेतनों में स्तन आदि सम्बन्ध नहीं है तो वहाँ किस प्रकार से लोक प्रसिद्ध स्तन आदि का ग्रहण कर सकते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए अम्बाकर्त्रीकार ने भाष्य का यह वचन [6] कि संसार की सम्पूर्ण मूर्तियाँ अर्थात् वस्तुएँ आविर्भावात्मक, तिरोभावात्मक, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध वाले हैं। और वह संस्त्यान, प्रसवरूप लिङ्ग चेतनों अचेतनों में व्याप्त हैं। इस प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। ऐसा करने से अचेतन खट्वा, वृक्ष आदि में लिङ्ग की सिद्धि हो जाती है।

सांख्यदर्शन में आकाश आदि का सत्त्व आदि तीनों गुणों से युक्त होने से आविर्भाव और तिरोभाव दोनों का आकाशादि में ज्ञान होता है [7]। संसार की सम्पूर्ण वस्तुएँ उद्भूतावस्था में प्राप्त प्रकृति के सत्त्व आदि गुणों से उत्पन्न हैं। त्रिगुणात्मिका मूलप्रकृति महत्-शब्द से वाच्य होकर बुद्धिरूप से परिणत होती है। इस प्रकार मूलप्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध यह

Correspondence:
विजेन्द्र कुमार आर्य
संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

पंचतन्मात्रायें दस इन्द्रियां और मन सभी उत्पन्न होते हैं। अत एव सत्त्व आदि से उत्पन्न होने वाले शब्दादि पंच तन्मात्रायें आकाश आदि रूप से परिणत होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच का परिणाम पृथिवी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस इन चार का परिणाम जल है। शब्द, स्पर्श और रूप का परिणाम तेज है। शब्द और स्पर्श का परिणाम वायु है। शब्द का परिणाम आकाश है। अतः शब्दादि के कारण सत्त्व आदि से ही संसार की अपचयवस्थापन्न तथा उपचयवस्थापन्न सम्पूर्ण वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं। इस तरह प्रकृति सर्वरूप पुरुष की भोग्या है। पुरुष चैतन्यरूप है, वह न तो प्रकृति = किसी का कारण है। एवं विकृति = किसी का कार्य नहीं है। वह पुरुष केवल चैतन्यरूप, अपरिणामी शुद्ध है [8]। चैतन्य आत्मा नित्य है और वह गुणत्रय से युक्त देह के आश्रित होता है। इसलिए उसमें आविर्भाव, तिरोभाव, साम्यावस्थारूप तीनों लिङ्गों की उत्पत्ति हो जाती है [9]।

इस प्रकार वैयाकरण लौकिक लिङ्ग का आश्रय नहीं ले सकते कोई व्याकरण सिद्धान्त होना चाहिए। तब वैयाकरण कहते हैं संस्त्यान तथा प्रसव स्त्रीत्वरूप तथा पुंस्त्वरूप लिङ्ग हैं। वृद्धि तथा न्यूनता रूपी उभय धर्मों की साम्यावस्था की स्थिति ही नपुंसकलिङ्ग है। इस प्रकार समझना चाहिए [10]।

इसी भाष्यतात्पर्य को वाक्यपदीयकार ने विवेचन किया है कि सब वस्तुओं में लिङ्ग के रूप में जो धर्म बताये गये हैं वह नष्ट न होने वाले हैं और आविर्भाव, तिरोभाव तथा स्थिति रूप हैं। जैसे कि तप्त भाड़ में रखे हुए धान्य गुणों से युक्त होने से निरन्तर परिवर्तनशील हैं इसी प्रकार चेतन तथा अचेतन सभी भावों में उपचय, अपचय और साम्यावस्था इन तीनों धर्मों से युक्त होते हैं [11]।

भर्तृहरि ने कहा है कि संसार की सभी वस्तुओं में जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं वे सभी सत्त्व आदि तीनों धर्मों से युक्त हैं [12]।

भाव यह है कि संसार के सम्पूर्ण संस्त्यान, प्रसवगुण वाले द्रव्यादि सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों से युक्त हैं इसलिए आविर्भाव, तिरोभाव और स्थिति इन तीन प्रकार की अवस्थाओं से युक्त होते हैं जब महाभूतों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये गुण कर्म होते हैं तो रूप, रस, गन्ध भी न्यून होते हैं। रस और गन्ध सब जगह नहीं होते। ऐसा भाष्यकार का मत है। इसलिए स्पष्ट किया है कि शब्द आदि पांच गुण सभी भावों में रहते हैं। सभी मूर्त पदार्थ शब्द आदि पांच गुणों के समुदायरूप होता है और एक-एक गुण का उत्कर्ष होने में आकाश से पृथिवी तक सभी मूर्तों में शब्द आदि पांच गुण समूहरूपता को प्राप्त करते हैं [13]।

न्यायदर्शन में द्रव्य का शब्दादि गुणों से भेद माना जाता है। उस दर्शन के अनुसार द्रव्य ही शब्द आदि गुणों का आश्रय है और समवाय सम्बन्ध के कारण द्रव्य शब्द आदि रूप ही होता है [14]। शब्द, स्पर्श, रूप तीनों गुण अलग-अलग हैं पर यथासंभव मिले हुए हैं अर्थात् विरोधी नहीं हैं। रस और गन्ध का तेज में अभाव है इसलिए रस और गन्ध विरोधी हैं। वे शब्द आदि सत्त्व, रजस् तमस् रूप गुणों के विकार वाले हैं इस प्रकार प्रत्येक गुण शब्दादि में प्रत्येक सत्त्व आदि गुणत्रय रूप धर्म वाला है। सब भाव सत्त्व आदि गुणों के परिणाम ही हैं। अतः प्रत्येक शब्द आदि गुण तद्रूप ही होते हैं।

सत्त्व आदि गुण त्रय रूप धर्म हैं। उसमें प्रकाश प्रसव अर्थात् आविर्भाव है जो सत्त्व गुण का धर्म है। प्रयत्न अथवा चेष्टा रजस गुण का धर्म है। आच्छादन अर्थात् तिरोभाव या स्थिति ही तमस् का धर्म है और यहीं धर्म अवस्थाभेद से स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदिरूप लिङ्ग है। प्रकाश से तात्पर्य प्रसव अथवा आविर्भाव से है और यह सत्त्वगुण का धर्म है इस प्रकाश रूप सत्त्व धर्मविषयक जो निरोध रूप में तमस् गुण के धर्म में है और प्रवृत्तिरूप जो रजोगुण का धर्म है उससे विलक्षण होने से यही पुंस्त्व है। सत्त्वादि धर्म से युक्त वस्तु का अपने कारण में तिरोभाव स्त्रीत्व है। सत्त्व आदि गुणों की साम्यरूप प्रवृत्ति तम की अधिकता वाली होती है यह नपुंसकत्व है।

इस प्रकार तीनों लिङ्ग सब भावों में अनुगत हैं अत एव यह प्रयोग किया जाता है। अयं पदार्थः, इयं व्यक्तिः, इदं वस्तु [15]।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थिति होता है कि यदि रूप आदि समुदायरूप वस्तु का उपचय, अपचय, स्थितिरूप धर्मों के साथ सम्बन्ध है तो रूप, रस, शब्द इत्यादि का कथन कैसे किया जा सकता है। रूप आदि से भिन्न ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे उनका आविर्भाव, तिरोभाव और स्थितिरूप धर्म माना जाये और जिससे उनका लिङ्ग से सम्बन्ध हो [16]। वाक्यपदीयकार इस शङ्का का समाधान देते हैं कि शुक्लादि की जो अवस्था विशेष होती है उनमें प्रतिक्षण हास होता है और कभी वृद्धि होती है कभी साम्यावस्था की स्थिति को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार रूप की शुक्ल आदि अवस्था विशेष की उपचय, अपचय और स्थिति से तीनों लिङ्गों से सम्बन्धित होता है [17]।

अम्बाकर्त्रीकार इसी का स्पष्टीकरण करते हुए व्याख्या करते हैं कि रूप शुक्ल आदि के रूप में विशिष्ट अवस्था को प्राप्त करने में क्रम बदलते रहते हैं क्योंकि वह सत्त्वादि गुणों से युक्त है। उसी प्रकार प्रत्येक क्षण में भिन्न-भिन्न नई अवस्था विशेष सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों में प्रतिक्षण परिणाम है परन्तु प्रतिक्षण परिणाम विद्यमान होते हुए भी स्थूल नेत्रों से सूक्ष्म होने के कारण नहीं जाना जाता है वह मात्र भाव तत्त्वदृष्टा योगियों द्वारा जानने योग्य है [18]। कहा भी गया है कि सब भावों में विभिन्न अवस्थाओं में पृथक् अर्थों के प्रतिभेद प्रतिक्षण विद्यमान है लेकिन सूक्ष्म होने से प्रतीत नहीं होते हैं [19]।

अम्बाकर्त्रीकार और अधिक स्पष्टता दर्शाते हुए कहते हैं कि सब भावों में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का प्रत्येक क्षण में भी प्रतिभेद विद्यमान है जो सूक्ष्म होने के कारण ज्ञान नहीं होता है। जैसे कि किसी भी वस्तु को उत्पत्ति और विनाश के मध्य प्रतिक्षण वस्तुतः परिणाम का अभाव होता है पर स्थूलकार्य न होने से उसकी शीघ्र ही प्राप्ति नहीं होती है। इस प्रकार उत्पत्ति और विनाश के मध्य वस्तु में प्रतिक्षण सूक्ष्म परिवर्तन होता है। जैसे कि आम्र आदि फलों के पूर्व-पूर्व श्यामादि रूप का नाश होने पर नवीन रक्तादिरूप की उत्पत्ति होती है पश्चात् जब आम्र आदि फल पूर्णरूपेण परिपाक का आविर्भाव होता है तो परिपाण्डु के साथ अवसान होता है। इसी प्रकार आम्र रस आदि की भी प्रतिक्षण अवस्था विशेष परिणाम या परिवर्तन को प्राप्त करती है और वह स्वादिष्ट आदि रूप परिणाम ही अवसान है [20]।

वाक्यपदीयकार समझाते हैं कि संसार की सम्पूर्ण वस्तुएं परिवर्तनशील हैं उनमें उबलते हुए जल के सामन सतत् अस्थिर वृत्ति वाली चंचलता है [21]। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक भाव एक क्षण भी बिना परिणाम के नहीं रह सकता जब ये गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं तब ये तत्त्व आदि गुण सृष्टिरूप में परिणत हो जाते हैं, जब प्रलय की स्थिति आती है तब ये गुण अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं [22]। इस प्रकार सभी भावों में उबलते हुए जल के तिरोभाव रूप कणों के समान चंचलता है तथा आविर्भाव रूप उपचय, अपचय के व्यापक होने से सब भावों में लिङ्ग के साथ सम्बन्ध है [23]।

नपुंसकविचार

इस प्रकार यदि सभी भावों में अस्थिर वृत्ति है तब स्थिति को किस प्रकार से नपुंसक कहते हैं इसे भर्तृहरि ने कहा है कि उपचय प्रवृत्ति और अपचय प्रवृत्ति और इन दोनों का प्रवृत्तित्व रूप से एकरूपत्व या अभेद स्थिति को कहते हैं, अथवा प्रत्येक अवस्था में अपचय तथा उपचय के प्रवाहों में भेद होने पर भी प्रवृत्तिरूपत्व से साम्यता स्थिति है [24]। दूसरे शब्दों में, उपचय अर्थात् आविर्भाव तथा अपचय अर्थात् तिरोभाव से युक्त वस्तु की स्थिति में उस हेतु को माना जाता है क्योंकि तिरोभाव के बाद आविर्भाव की प्रवृत्ति होने पर तिरोभाव नहीं रहता। स्थिति को भलीभाँति समझने के लिए अम्बाकर्त्रीकार तीन प्रकार से स्पष्टीकरण कर रहे हैं प्रथम – पदार्थों की उपचय तथा अपचय दो अवस्थाएं होती हैं। यहाँ उपचय के

प्रवाह में जो वृद्धि नाम की प्रवृत्ति है उस प्रवृत्ति के प्रतिक्षण भेद में भी सादृश्यमूलक आकृति से अभेद प्राप्त होने से वही प्रवृत्ति स्थिति व्यवस्थापित करते हैं। द्वितीय – अथवा प्रतिक्षण उपचय तथा अपचय प्रवाहों के प्रवृत्तिरूप भेद में भी प्रवृत्तिरूप से साम्य स्थिति कही जाती है। तृतीय-सत्त्व आदि गुणों के वृद्धिरूप परिणाम में अथवा अपायरूप में उनके परिणामों में प्रवृत्तिरूप समानता है वह ही साम्य स्थिति है [25]।

आविर्भाव तथा तिरोभाव की प्रवृत्ति और उनके मध्य जो व्यवहित प्रवृत्ति है वह हेतुभूत होने से वस्तु की स्थिति कल्पित की गई है अथवा प्रसिद्ध है। इसको इस प्रकार भी स्पष्ट कर सकते हैं कि किसी भी अवस्था के तिरोभाव होने पर, दूसरे का उसके स्थान पर तुरन्त आविर्भाव हो जाता है। इस प्रकार तिरोभाव का प्रतिष्ठित न होना ही वस्तु की स्थिति को स्पष्ट करता है [26]।

इस प्रकार सतत् परिणामयुक्त गुणों के प्रतिक्षण स्वभाव के भेद होने पर भी सादृश्यमूलक स्वरूप में अभेद की प्राप्ति से स्वभाव की साम्यता है तिरोभाव के अनन्तर ही दूसरी अवस्था की प्राप्ति होने से अथवा तिरोभाव का पर्यवसान ही नपुंसक रूप स्थिति कहीं गई है [27]।

गुणावस्थालिङ्गविचार

'स्थिति' इस अवस्था को और अधिक स्पष्ट करते हुए वाक्यपदीयकार कहते हैं- भावों में सत्त्व आदि गुणसामान्य का ज्ञान होने से नपुंसकलिङ्ग प्रयुक्त कार्य ही निमित्त है क्योंकि इसमें गुणों का ज्ञान होता है इसलिए गुण सामान्य ही स्थिति है अथवा गुणसामान्य विषयक ज्ञान ही स्थिति है। गुण सामान्य अथवा गुणविषयक मानने पर स्थिति सब लिङ्गों की सर्वनाम कही गई है। जैसे कि तद् आदि सर्वनाम सब अर्थों के वाचक हैं उसी के समान स्थिति रूप नपुंसकलिङ्ग को कहने वाले शब्द सभी लिङ्गों के वाचक है [28]।

भाव यह है कि सत्त्व आदि गुण सभी वस्तुओं को प्राप्त करके अपने स्वभाव के अनुसार रहते हैं। प्रत्येक क्षण प्रकाश की प्रवृत्ति के नियमों की सत्त्व आदि गुण धर्मों की सत्त्व आदि तीनों गुणों के उपादान भावों में अनुवृत्ति होती है। इस प्रकार सत्त्व आदि गुण सामान्यरूप का अनुगमन करने से सभी अवस्थाओं में रहते हैं इन अवस्थाओं में ये गुण है इस प्रकार ज्ञान के सत्त्व आदि गुण कारण हैं और वह ही गुण नपुंसकलिङ्गरूप है। सत्त्व आदि गुण का सामान्य स्वरूप स्थिति है सामान्य में सभी विशेषों का अन्तर्भाव हो जाने से आविर्भाव तथा तिरोभाव दोनों का भी गुणसामान्य रूप से अनुगमन होने से स्त्रीत्वादि रूप लिङ्गविशेष स्थिति शब्द से कहे जाते हैं सर्वनाम के समान होने से स्त्रीलिङ्गवाचक होने से सर्वनाम कहे जाते हैं [29]।

इसे ही पाँचवा मत माना गया है इसमें यही विशेषता है कि इसके द्वारा इसी प्रसङ्ग में एक भिन्न सम्भावना को भी मान्यता दी गयी है। यह जरूरी नहीं है कि संस्त्यान आदि गुणों को ही सर्वत्र अनिवार्यरूप से लिङ्ग के निश्चय का आधार माना जाए। लिङ्ग के आधार पर प्रायः सत्त्व आदि गुण स्वयं भी हो जाते हैं। यद्यपि उनकी पहचान भी पहले कही गई गुणवस्थाओं के द्वारा ही होती है।

सुब्रह्मण्यम् अय्यर ने नपुंसकलिङ्ग के इस सार को स्पष्ट करते हुए कहा है कि नपुंसक वह तत्त्व है जिसके द्वारा गुणों का गुणों के रूप में गुणों के परिणामी होने पर भी पहचान लेते हैं। गुणों के तादात्म्य का ज्ञान होता है इस तादात्म्य ज्ञान का निमित्त ही स्थिति है। इसे जातिरूप माना जा सकता है जिसके अन्य दो लिङ्ग भेद है इस रूप में नपुंसक सामान्य लिङ्ग है। जिसके अन्तर्गत अन्य दो लिङ्ग आते हैं इसलिए लिङ्ग के संबंध में निश्चित न होने पर अथवा दो अन्य लिङ्गों में से किसी एक का सूचन अभिप्रेत न होने पर नपुंसकलिङ्ग का प्रयोग कर सकते हैं [30]।

गुणावस्था लिङ्गव्यवस्थाविचार

इस प्रकार यह निश्चित होता है कि गुण की अवस्था ही लिङ्ग है

और यदि गुण की अवस्था को ही लिङ्ग निर्णीत करते हैं तो सब भावों में गुण की अवस्था सम्भव होती है और यदि सभी भावों में गुण की अवस्था सम्भव होगी तो किस प्रकार से प्रत्येक में निश्चित पुंस्त्व आदि लिङ्ग का अभिधान करने वाले शब्दों के प्रयोग सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था करेंगे [31]। तो महाभाष्यकार ने समाधान दिया है कि विवक्षा ही लिङ्ग की व्यवस्था में नियत है [32]। इस समाधान भाष्य की व्याख्या करते हुए भर्तृहरि कह रहे हैं कि यदि तीनों लिङ्ग प्रत्येक वस्तु में विद्यमान हैं तो यह निश्चित करने का कोई न कोई उपाय होना चाहिए कि किस लिङ्गविशेष को कौन सा शब्द अभिव्यक्त करे इसलिए कहते हैं कि इसका निर्णायक तत्त्व विवक्षा है। निर्णायक तत्त्व विवक्षा मानने से तो किसी भी लिङ्गविशेष का स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग दिखाई देने लगेगा। बल्कि ऐसा नहीं होता यदि ऐसा होता तो नियत लिङ्ग से कहे जाने वाले दारा आदि शब्द सब लिङ्गों के अभिधान के लिए होते। परन्तु नियत लिङ्ग दारा आदि शब्दों में उससे इतर लिङ्ग की विवक्षा नहीं होती है [33]।

अम्बाकर्त्रीकार स्पष्ट करते हैं कि सब भावों में सत्त्व आदि तीनों गुणों के विकार आविर्भाव तिरोभाव तथा स्थिति रूप होते हैं और सभी भावों में आविर्भाव आदि रूप लिङ्गत्रय मानने पर जिस शब्द में जो लिङ्ग है उसकी विवक्षा विवक्षानियम आश्रय से है। ऐसा करने से तो किसी भी लिङ्गविशेष का व्यापार किसी भी शब्द में उसके संस्कार के लिए स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग इस प्रकार शास्त्र में स्वीकार किया जाता। इसलिए कहा गया है कि अर्थ के विषय में यह नियत लिङ्ग के धर्म वाला है, इस प्रकार का प्रयोग शब्दशक्ति के नियम के कारण होता है। प्रयुक्त हुए शब्दों का यह अन्वाख्यान शास्त्र के द्वारा होता है। जिस लिङ्ग वाले शब्द जिस अर्थ में लोक व्यवहार में प्रयुक्त है। उस लिङ्ग वाले शब्द उस अर्थ में ही शास्त्र अन्वाख्यान किये गये हैं [34]।

दृष्टान्त से प्रतिपादन

वाक्यपदीयकार ने इसे दृष्टान्त से भी बताया है कि जैसे खाती हो अपने काम के दौरान लक्षण, छेदन आदि अनेक कार्य करने पड़ते हैं परन्तु इन कार्यों में से एक कार्य काटना के आधार पर लोक व्यवहार में उसे तक्षक कहा जाता है लेकिन उनमें से प्रयोग के लिए किसी एक लिङ्ग को प्रयुक्त किया जाता है [35]।

भाव यह है कि वस्तु के विषय में प्रवृत्तिनिमित्त अनेक शब्दों के समीप होने पर भी स्वशक्ति की विविधताओं के कारण शब्दों का प्रवर्तक कोई एक निमित्त होता है। जैसे -बढ़ई अपने काम के दौरान अनेक कार्य करता है जैसे तक्षण, क्षेदन, भेदन आदि पर इन कार्यों में से एक कार्य अर्थात् तक्षण (काटना) के आधार पर उसे तक्षक कहा जाता है। उसी प्रकार से शराव आदि कारणरूप होने पर भी कुम्भ को बनाने के निमित्त कुम्भकार शब्द का प्रयोग होता है। कहा भी गया है कि शब्द व्युत्पत्तिनिमित्त तथा प्रवृत्तिनिमित्त भिन्न-भिन्न होते हैं। इस प्रकार स्त्रीत्वादि सभी लिङ्ग वस्तु के धर्म हैं और शब्द उनमें से किसी एक लिङ्ग से चुनकर अपने रूप के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं [36]।

लिङ्ग का लोकाश्रयत्वात् कथन

इसे ही महाभाष्यकार ने कहा है कि लिङ्ग के निर्णय में लोक भी नियम है अर्थात् लोक से लिङ्गविषयक नियमों को जानना चाहिए [37]। यदि लोक से ही जो शब्द जिस लिङ्ग में प्रयुक्त है उस शब्द को उस लिङ्ग में प्रयोग कर लेंगे तो इससे 'स नपुंसकम्' [38] अर्थ नपुंसकम् [39] लिङ्गानुशासन नहीं कहने चाहिए।

दूसरी बात यह है कि यदि लोक से लिङ्गविषयक नियम जानने चाहिए तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो लोक में ग्राह्य नहीं है उसके विषयक में क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर वाक्यपदीयकार ने इस प्रकार दिया है कि जो लोक से ग्राह्य नहीं है वह शब्दार्थों में व्यवस्थित है और शब्दार्थ के स्वरूप के विषय में निश्चय करने वाले भावतत्त्वदृश अर्थात् सभी वस्तुओं के परमार्थरूप

को साक्षात्कार करने वाले शिष्ट है। शिष्ट जिस-जिस शब्द में जो-जो लिङ्ग है उसे वे शिष्ट धर्मजकत्व बुद्धि से उसी लिङ्ग में प्रयोग करते हैं [40]।

इस प्रकार प्रयोग करने वाले शिष्ट पुरुष से सम्बन्धित विवक्षा लिङ्ग के विषय में है, लोकसम्बन्धी स्वेच्छारूप नहीं होती है [41]।

लिङ्गानुशासन का उपयोग कथन

इसलिए शिष्ट प्रयोग से ही शब्दों के स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग की सिद्धि है और उन लिङ्ग विशेष द्योतन शक्ति के प्रतिपादक 'स नपुंसकम्' आदि आदि आचार्य पाणिनि ने पढ़े हैं। महाभाष्य में यहां पर यह आक्षेप करते हैं कि यदि जब लोक से ही लिङ्ग का ग्रहण है तो लिङ्ग का प्रकरण नहीं कहना चाहिए था तथा यदि 'स नपुंसकम्' आदि प्रमाण ज्ञान एवं शिष्टप्रसिद्धि बल इन दोनों से शास्त्रों में शब्द साधुत्व के लिए स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व माने तो वह भी ठीक नहीं कही जाती है क्योंकि विषयभेद होने पर लिङ्गभेद भी होता है अर्थात् अर्थभेद होने पर लिङ्गभेद भी होता है। जैसे - निधि (धन) के अर्थ में शब्द पुल्लिङ्ग में है तथा जल से उत्पन्न होता है इस अर्थ में शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में है [42]।

वाक्यपदीयकार उदाहरण के माध्यम से समझाते हुए सिद्ध करते हैं कि शब्दों में जो लिङ्ग व्यवस्था है वह शिष्ट प्रसिद्धि के आधार पर ही है जैसे अक्ष आदि शब्द का आद्युदात्तत्त्व तथा अन्तोदात्तत्त्व दोनों साधु है क्योंकि किसी अर्थ में अदेवने न जुआ खेलना साधु है और किसी अर्थ में देवने जुआ खेलना साधु है। यहाँ यह दर्शाया गया है कि जैसे यहाँ स्वर भेद से अर्थ भेद हो गया है। इसी प्रकार से शिष्ट प्रयोग से लिङ्ग भेद निश्चित होता है और शास्त्र में शब्दों को साधु भी माना जाता है [43]।

भाव यह है कि जैसे सूक्ष्म रूप वाले उदात्त आदि स्वर, स्वर की दृष्टि से तो जातिरूप से अभेद सम्बन्ध वाले माने जाते हैं किन्तु स्वरभेद विषयक विशेषण का आश्रय लेने से वह निश्चित अर्थ वाले होते हैं और उसी से शब्दों के साधुत्व का ज्ञान होता है। इसी को उदाहरण से समझाया गया है कि 'अक्षस्यादेवनस्य' इस फिट सूत्र से देवन सम्बन्धी अक्ष को छोड़कर अन्य अक्ष आद्युदात्त स्वर ही साधु है परन्तु देवनाक्ष में अद्युदात्त स्वर साधु नहीं है और देवनाक्ष में अन्तोदात्त स्वर ही साधु है शकटाक्ष आदि में साधु नहीं है।

इस प्रकार शिष्टों में प्रयोग किये जाने से शब्द शक्ति नियत है और विषयान्तर में भी प्रयोग के कारण शब्दों का साधुत्व जान लिया गया है जो इस अर्थ में नियत है। इसी प्रकार शिष्ट प्रयोग से ही लिङ्ग नियम निश्चित है और लिङ्ग अनेकत्व में शब्दों का साधुत्व अर्थभेद से व्यवहार में अवस्थित है और उसी का शास्त्र में अनुगमन करते हैं। उसे ही दर्शाते हैं - समानरूप से विभाजन के अर्थ में अर्ध शब्द नपुंसकलिङ्ग है जैसे 'पिप्पल्या अर्धम अर्धपिप्पली' और एक अंश के अर्थ में अर्धशब्द पुल्लिङ्ग होता है जैसे ग्रामस्यार्ध। इसी भाँति सार शब्द न्याय से नपुंसकलिङ्ग होता है जैसे - नैतत् सारम्। और उत्कृष्ट अंश है अर्थ में पुल्लिङ्ग होता है जैसे -खदिरसारः चन्दनसार इत्यादि [44]।

इसी प्रसंग को अम्बाकर्त्रीकार ने एक वाक्य से भी समझाया है "पद्यशब्दो निधौ पुंसि स्थितौ पुंसि च तोयजे" इस वाक्य में स्थितौ शब्द नपुंसक लिङ्ग इस अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि इसमें पदम्, शब्द पुल्लिङ्ग में हैं और जल में उत्पन्न होता है। इस अर्थ में पदम्, शब्द, शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में है [45]।

इस प्रकार शिष्टों में स्वीकृत स्वरसंस्कार का नियम जैसा है वैसा ही शास्त्र अनुगमन करते हैं जैसे ही लिङ्गनियम भी शिष्ट प्रसिद्ध है शास्त्र से क्यों नहीं अनुसरण करते हैं। इसका निराकरण वाक्यपदीयकार कर रहे हैं कि लोक व्यवहार में प्रयोग, विप्रयोग और विपरीतप्रयोग प्राप्त होते हैं जैसे -अक्षिणी में दर्शनीये, अक्षीणि मे दर्शनीयानि, पादौ मे सुकुमारतरौ, पादा मे सुकुमारतरा इत्यादि। इन प्रयोगों में विपरीतप्रयोग की निवृत्ति के लिए शास्त्र का आरम्भ करते

हैं। विपरीत प्रयोग के अभाव में तो शास्त्र का आरम्भ नहीं करते हैं। अतएव लिङ्गानुशासन कहना चाहिए [46]।

'अक्षीणि मे दर्शनीयानि' पादा में सुकुमारतराः' इन प्रयोगों में द्वित्व और बहुवचन का यह प्रयोग विपरीत लोक में दिखाई देता है बल्कि इनमें द्वित्व प्रयोग ठीक है और जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है उसकी निवृत्ति के लिए 'बहुष बहुवचनम्' इत्यादि से शास्त्र में कहते हैं और जहाँ विपरीत प्रयोग नहीं दिखाई देता वहाँ शास्त्र की क्या आवश्यकता है? अनियम में नियम की प्रवृत्ति शास्त्र के द्वारा हो इसलिए नियम किया जाता है। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र पर भाष्यकार ने व्याख्यान किया है कि 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? भाष्यकार कहते हैं कि जैसे वाक्य में पदों का प्रयोग अनियत होता है वैसे समास में भी अनियत प्रयोग प्राप्त होने पर नियम के लिए 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र का आरम्भ है। इस भाष्य वाक्य का खण्डन करते हुए अन्य आचार्य कहते हैं कि लोक में राज्ञः पुरुषः' इस विग्रह में समास करे पर 'राजपुरुषः' यही प्रयोग करते हैं, कोई भी उक्त विग्रह में समास करने पर 'पुरुषराजः' ऐसा प्रयोग नहीं करता है, अतः 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र का आरम्भ उपसर्जन का परप्रयोग निवृत्ति नहीं हो सकता है। नित्यशब्दों में प्रयोगसाङ्कर स्थित होने पर गावी आदि प्रयोगनिवारण के लिए यह शास्त्र है। परन्तु यहाँ विपर्यय प्रयोग नहीं देखा जाता है। अतः उसकी निवृत्ति के लिए किया गया सूत्रारम्भ व्यर्थ है। अब आगे सूत्रारम्भ पक्ष में भी दोष देते हैं कि जहाँ 'राज्ञः पुरुषस्य' ऐसा दो षष्ठ्यन्त पदों का उच्चारण करते हैं वहाँ 'षष्ठी' सूत्र से समास होने पर विग्रह के दोनों षष्ठ्यन्तों का पूर्वप्रयोग प्राप्त होगा। वहाँ आप पुरुषपद के पूर्वनिपात का वारण कैसे करेंगे? यहाँ उत्तर देते हैं कि उपसर्जन यह अन्वर्थसंज्ञा है, अतः अप्रधान का ही पूर्वनिपात हो, प्रधान का नहीं। क्रिया में साक्षात् अन्वय होने से पुरुष प्रधान है तथा राजा अप्रधान है अतः अप्रधान उपसर्जन का ही पूर्वनिपात होगा, प्रधान का नहीं यदि प्रधान का पूर्वनिपात करेंगे तो 'उपसर्जनं पूर्वम्' यह निर्देश चरितार्थ नहीं हो सकेगा।

इसलिए लिङ्गानुशासन का भी आरम्भ करना चाहिए [47]।

इस प्रकार शिष्ट प्रयोग होने से शब्दशक्ति के अनुसार शब्दों में निश्चित लिङ्ग सिद्ध है और इस दृष्टि से लिङ्ग शब्दों का धर्म है। वस्तुतः वस्तु का नियतलिङ्ग है और इसे शब्दों से कहा जाता है। इसे वार्तिककार ने वार्तिक से सिद्ध किया है कि एक ही अर्थ में जब अनेक शब्द होते हैं तब अर्थ समान होने पर भी शब्दभेद होने से लिङ्गभेद भी देखा जाता है 'अयं पदार्थः, इयं व्यक्तिः, इदं वस्तु इति [48]।

सत्त्व, रजस्, तमस् गुणरूप विकार नक्षत्र आदि पदार्थों में पुष्यत्व तारकात्त्व,नक्षत्रत्व आदि रूप उपाधि के भेद से तथा अरण्यानी, हिमानी इत्यादि में महत्त्व आदि रूप उपाधि भेद से अवस्थित हैं और वे सत्त्वादिगुण समुदायात्मक भाव को प्राप्त करके नक्षत्र आदि पदार्थों में है एवं इन पदार्थों को पुष्य, तारका, नक्षत्र आदि से शब्दशक्ति के अनुसार शब्दों के साधुत्व के लिए विवक्षा की व्यवस्था की गई है [49]।

अम्बाकर्त्रीकार स्पष्ट करते हैं कि सत्त्वादि गुणों से विकार रूप धर्म लिङ्ग कहे जाते हैं और व सत्त्वादिगुण साम्यावस्था से युक्त हैं तथा प्रकृति, प्रधान आदि शब्दों से कहे गये हैं। इन सत्त्वादि गुणों की सूक्ष्मत्व अवस्था लोकव्यवहार से साक्षात् नहीं होती है क्योंकि परिणामी है। यह सत्त्वादि गुण परिणामरूप होने के कारण आविर्भाव, तिरोभाव आदि अवस्थाओं से लिङ्गरूप में भाष्य में वर्णित है। वस्तुतः वस्तुओं में जो-जो लिङ्ग हैं उसे कहने के लिए शब्द ही हेतु है और शब्द से लिङ्ग के साधुत्व का ज्ञान होता है इसलिए शब्दों से ही दारा आदि शब्दों में लिङ्ग को नियम किया गया है [50]।

जैसे कि पुष्य, तारका, नक्षत्रम् शब्द समानार्थक है और समानार्थक होने पर भी पुष्य, तारका, नक्षत्रम् शब्दों में भिन्न-भिन्न लिङ्ग से कहे गये हैं। इन भिन्न-भिन्न लिङ्गों को कहने का कारण लिङ्ग सम्बन्धी नियम है। समान अर्थ में भी एक ही शब्द में अवयव वर्ण के अन्य

होने पर भी अन्य लिङ्ग देखा जाता है – जैसे कि तटः, तटी, तटम्, हिम, हिमानी आदि। इस प्रकार एक ही पदार्थ को जब अनेक शब्द द्योतित करते हैं तब अर्थ समान होने पर शब्दभेद होने से लिङ्गभेद गुणावस्था रूपों में माना गया है [51]।

इसे ही वाक्यपदीयकार एक उदाहरण से समझा रहे हैं कि हिम और अरण्य में संस्त्यानरूप स्त्रीत्व है तथा कुटी में प्रसवरूप पुंस्त्व है। यहाँ हिम, अरण्य तथा कुटी में एक ही शब्द में अवयववर्ण के अन्य होने पर अन्य लिङ्ग है जैसे कि कुटी शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है परन्तु रेफरूप अवयव के अधिक होने से कुटीर शब्द में लिङ्गभेद हो गया है [52]।

भाव यह है कि हिम, अरण्य आदि अवच्छेदक धर्म से सम्बद्ध हिम और अरण्य में स्त्रीत्व संस्त्यान से समवेत है, जैसे – महद्-हिम, हिमानी। महद् अरण्य, अरण्यानी इत्यादि। यहाँ हिम और अरण्य में तीनों लिङ्गों के होने पर भी संस्त्यान ही है, इसके लिए उस अर्थ से युक्त हिमानी अरण्यानी शब्दों से प्रकाशित शब्दों में ऐक्य होने पर भी क्योंकि अवयव भिन्न है इसलिए लिङ्ग भिन्न है तथा लिङ्गत्रय से सम्बन्ध होने पर भी ह्रस्वत्व अवच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न कुटी शब्द का प्रसव से पुंस्त्व धर्म से सम्बन्ध कुटीर शब्द से प्रकाशित होता है [53]।

इसे ही सूत्र से बताते हैं – 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' "इस सूत्र में र प्रत्यय स्वार्थिक है। इस सूत्र में यह बताया गया है कि कुटी और कुटीर शब्द पर्याय है। कुटी शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है परन्तु रेफरूप अवयव के अधिक होने से कुटीर शब्द में लिङ्गभेद हो गया है। इसी प्रकार यवी, यवानी आदि शब्दों में अवयव भिन्न होने पर लिङ्ग भेद होता है [54]।

केवल उपाधि आदि रूप अवच्छेदक धर्म का भेद होने से वह ही शब्द दूसरे लिङ्ग से कैसे युक्त हो सकते हैं? इस शङ्का का समाधान वाक्यपदीयकार ने किया है कि हिम आदि शब्दों के अर्थ की दृष्टि भिन्न होने पर भी, हिमानी आदि शब्दों के अर्थ भिन्न नहीं है अथवा हिम हिमानी आदि शब्दों में अर्थ भिन्न नहीं है। मात्र शब्दों के ही भेद हैं। हिम, हिमानी आदि शब्दों में भेद होते हुए भी अभेद है। इसलिए ऐसा निश्चित करके कहा गया है आनुक् र प्रत्यय आदि ये लाघव के लिए उपदेश दिये गये हैं [55]।

व्याकरण में लघु उपाय से शब्दों का अनुशासन है और वहाँ जब तक सामान्य से वह उपदेश कर सकते हैं तब तक करने का प्रयास करते हैं। हिम आदि रूप शब्द सामान्य का आश्रय लेकर उपाधि से महत्त्व आदि विशिष्ट हिम आदि रूप अर्थान्तरविषयक हिमानी आदि शब्दों से अनुशासन करते हैं— यथा हिमानी, कुटीर इत्यादि [56]।

इस प्रकार लाघव का सम्पादन करते हैं अन्यथा उस उस शब्द विशेष का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न अनुशासन करे तो महान गौरव हो जाय। इस तरह लाघव के अनुशासन में हिम, हिमानी शब्दों का परस्पर भेद नहीं है बल्कि अर्थभेद है इसलिए भेद है। अर्थभेद होने से हिम, हिमानी आदि शब्दों में भेद स्वाभाविक है इस प्रकार प्रत्येक में निश्चित लिङ्ग विलक्षण है। हिम, हिमानी आदि शब्द जैसे हैं उसी प्रकार अपने अर्थ विशेष में नियत है। हिमानी, कुटीर आदि शब्दों में तो अवयवों का ह्रास नहीं होता परन्तु हिम, कुटी आदि से ये दूसरे शब्द हैं।

इस प्रकार इस लिङ्गानुशासन के निराकरण से तथा शब्दशक्ति के विशेषरूप वर्णन के तात्पर्य से सर्वत्र गुणावस्था ही लिङ्ग है ऐसा सूचित होता है।

सन्दर्भ

1. तदेवं लौकिकं लिङ्गं स्तनकेशपुंयञ्जनादिरुपमचेतनेषु खट्वावृक्षादिषु अव्याप्तमुपेक्ष्य "संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ स्वकृतान्तः इति पारिभाषिकं भाष्ये लिङ्गमुक्तम्। अम्बा.वा.प. लि., पृ.-728
2. तथाहि सांख्या सत्त्वरजस्तमसां गुणानां सततपरिणामिनामुपचयापचयमाध्यस्य लक्षणा अवरथाविशेषा

यथायोगं पुस्त्वादिलिङ्गमातिष्ठन्ते। तदेतद्भाष्यकाराभितं दर्शनम्। हे.वा., पृ.-131

3. संस्त्यानं संहनन.....पकारादेश इत्यर्थः। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-728
4. उणादिकोष 4/179
5. अनेन च प्रकारेण संतति पालनकर्ता।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-729
6. सर्वाश्च पुनमूर्त्तय एवात्मिका शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवत्यः। महाभाष्य 4-1-3
7. यद्यपि चाविर्भावतिरोभावावपि प्रतिपत्ति। अम्बा.व.लि., पृ. 729
8. प्रदीप – उद्योत म.भा., 4-1-3
9. नित्यभूतेऽप्यात्मनिगुणत्रयात्मकदेहाश्रितत्वेन गुणमध्यव्यवस्थितत्वात् चैतन्यमात्मा चिदित्यत्र गुणधर्माविर्भावतिरोभावसाम्यावस्थारूपलिङ्गत्रयोपपत्तिः।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-229
10. तदेवम् "न शक्यं भवति। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-729
11. आविर्भावतिरोभावः स्थितिश्चेत्यनपायिनः। धर्मा मूर्तिषु सर्वासु लिङ्गत्वेनानुदर्शिता।। वा.प.-3 13, पृ.-138
12. सर्वमूर्त्यात्मभूतानां शब्दादीनां गुणे-गुणे। त्रयः सत्त्वादिधर्मास्ते सर्वत्र समवस्थिताः।। वा.प. 3 13, पृ.-138
13. अयं भावः – सर्वाश्च तदाश्रयस्य। अम्बा.वा.प.लि., पृ. 731
14. तत्र शब्दः उक्तः।। वही, पृ.-731
15. तत्र प्रकाशः इदं वस्तु' इति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-731
16. भवतु रूपादि समुदायात्मनो वस्तुनो धर्मत्रययोगः उपचयापचयस्थितिरूपधर्म त्रययोगः, रूप, रसः, शब्दः इत्यादिव्यपदेशस्तु कथम् रूपाद्यन्तराभावात् केवलानां तेषामुपरि न हि कस्यचिदाविर्भावदयः सन्ति, येन लिङ्गयोगः स्यादित्याशङ्कयाह। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-732
17. रूपस्य चात्ममात्राणां शुक्लादीनां प्रतिक्षणम्। काचित् प्रलीयते काचित् कथञ्चिदभिवर्धते।। वा.प.3.13.पृ.-139
18. अयं भावः- रूपं शुक्लाद्यवस्थाविशेषादनक्रमेण ... रूपादिष्वप्यनुयायिनौ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-732
19. कलानां पृथगर्थानां प्रतिभेदः क्षणे-क्षणे। विद्यते सर्वभावेषु सौक्ष्यात् तु न विभाव्यते।। वा.प.3.13.
20. अर्थानां पृथक्कलानां स्वादिष्टारिपरिणामावसान इति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-733
21. क्वथितोदकवच्चैषामनवस्थितवृत्तिता। अजस्रं सर्वभावानां भाष्य एवोपवर्णिता।। वा.प.-3 .13, पृ.-139
22. म.भा.-4-1-3
23. पच्यमानजलकणसदृशी चञ्चलता सर्वभावानामाख्याता। तथा चाविर्भावतिरोभावयोरुपचयापचयरूपयोर्व्यापकत्वात् सर्वेषु भावेषु लिङ्गयोग इति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-733
24. प्रवृत्तेरकरुपत्वं साम्यं वा स्थितिरुच्यते। आविर्भावतिरोभावप्रवृत्त्यावावतिष्ठते।। वा.प. 3 .13, पृ.-140
25. भर्तृहरि वा.प.रामचन्द्र द्विवेदी
26. उपचयापचरूपे द्वेऽवस्थे ... यावत्।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-734
27. तदेवं सततं निरूपिता इति। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-735
28. गुणा इत्येव बुद्धेर्वा निमित्तत्वं स्थितिर्मता। स्थितेश्च सर्वलिङ्गानां सर्वनामत्वमुच्यते।। वा.प.3.13, पृ.-140
29. इह सत्त्वादयोगुणा व्यवह्रियते।। अम्बा.वा.प.लि., पृ. 735
30. दृष्टव्य भर्तृ. वा.प. अनु. रामचन्द्र द्विवेदी, 415
31. तदेवम् गुणावस्था लिङ्गम् लिङ्गस्येत्यर्थः।। अम्बा.वा.प. लि., पृ. 736
32. महा.भा. 4-1-3
33. स्थितेषु सर्वलिङ्गेषु विवक्षानियमाश्रयः। कस्यचिच्छब्दसंस्कारे व्यापारःक्वचिद्विष्यते।। वा.प.3. 13 पृ, 141
34. सत्त्वादिगुणत्रयविकारेषु ... सिद्धेति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-736
35. सन्निधाने निमित्तानां किञ्चदेव प्रवर्तकम्। यथा तक्षादिशब्दानां लिङ्गेषु नियमस्तथा।। वा.प.लि.3.13,पृ.-141
36. वस्तुनि प्रवृत्तिरभिधानवैचित्र्यात्।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-737

37. म.भा. 4-1-3
 38. अष्टा. 2-4-17
 39. अष्टा. 2-2-2
 40. भावतत्त्वदृशः शिष्टाः शब्दार्थेषु व्यवस्थिता ।
 यद् यद् धर्मङ्गतामेति लिङ्गं तत्तत् प्रचक्षते ।। अम्बा.वा.प.3. 13,
 पृ.-141
 41. इह प्रागुक्ते इत्युक्तं भवति ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-738
 42. अत एव शङ्ख, शङ्खम् इति ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ. 738
 43. स्वरभेदात् यथा शब्दाः साध्वो विषयान्तरे ।
 लिङ्गभेदात् तथा सिद्धात् साधुत्वमनुगम्यते ।। वा.प.3.13, पृ.142
 44. यथा सूक्ष्मरूपस्योदात्तादेः खदिरसारः इति ।। अम्बा.वा.प.लि.,
 पृ.-739
 45. अत्र स्थितौ इत्यस्य नपुंसके इत्यर्थः । निधौ 'पदमः, शङ्खः, इति
 पुंसि । जलजे तु 'पदमः, पदम्, शङ्ख, शङ्खम् इति पुंसि नपुंसके
 चेत्यादि उदाहार्यमिति ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-739
 46. प्रयोगो विप्रयोगश्च लोके यत्रोपलभ्यते ।
 शास्त्रमारभ्यते तत्र न प्रयोगाविपर्यये ।। वा.प.लि.3 13, पृ.-142
 47. अक्षीणि मे दर्शनीयानि, पादा मे प्रत्याख्यातमिति ।। अम्बा.वा.
 प.लि., पृ.-740
 48. 'तदेवं शिष्टप्रयोगात् लिङ्गान्यत्वमवयवान्यत्वाच्च । इति ।।
 अम्बा.वा.प.लि., पृ.-741
 49. उपाधिभेदादर्थेषु गुणधर्मस्य कस्यचित् ।
 निमित्तभावः साधुत्वे विवक्षा च व्यवस्थिता ।। वा.प.3.13, पृ.-143
 50. अयं भावः सत्त्वादिगुणविकाराणां ...विवक्षा ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-741
 51. तद् यथा- पुष्यतारका उक्तमिति ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.-742
 52. हिमारण्ये महत्त्वेन युक्ते स्त्रीत्वमवस्थितम् ।
 ह्रस्वोपाधिविशिष्टायाः कुट्याः प्रसवयोगिता ।। वा.प.3 .13, पृ.-144
 53. महत्त्वलक्षणेनोपाधिना.....अवयवान्यत्वात् ।। अम्बा.वा.प.लि., पृ. 742
 54. तथा च सूत्रम् कुटीशमीशुण्डाभ्योरः ... उदाहार्य इति - अम्बा.वा.
 प.लि., पृ.-743
 55. शब्दान्तराणां भिन्नेऽर्थः उपायाः प्रतिपत्तये ।
 एकतामिव निश्चित्य लघ्वर्थमुपदर्शिताः ।। वा.प.-3.13 पृ.-144
 56. इह - व्याकरणे । अम्बा.वा.प.लि., पृ.-743

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची वर्णानुक्रमानुसारिणी

- अभ्यंकर, के.वी. लिमये वाक्यपदीयम्, भण्डारकर ओरियण्टल,
 रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना - 1975
 अय्यर, सुब्रह्मण्य भर्तृहरि हि. अनु. रामचन्द्र द्विवेदी
 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,
 1981
 आष्टे, वामन शिवराम वाक्यपदीय पदकाण्ड, हेलाराज टीका
 प्रकीर्ण प्रकाश डेकन कॉलेज पूना, 1973
 ईश्वर कृष्ण वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड स्वोपज्ञवृत्ति पद्धति
 डेकन कॉलेज, पूना, 1966
 उपाध्याय बलदेव संस्कृत हिन्दी कोश, न्यु भारतीय बुक
 कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2009
 कौण्डभट्ट सांख्यकारिका ;तत्त्वकौमुदी सहित सं. -
 रामाशङ्कर भट्टाचार्य, मोतीलाल
 बनारसीदास, वाराणसी, 1967
 त्रिपाठी, रामप्रसाद काशी की पाण्डित्य परम्परा
 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1983
 त्रिपाठी, रामसुरेश संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उत्तर
 प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2001
 वैयाकरणभूषणसार, सम्पादक प्रभाकर
 मिश्र, वाराणसी, श्री सम्वत्, 2029
 पाणिनीय व्याकरणे प्रमाण समीक्षा, वा.
 सं. विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1972
 संस्कृत व्याकरणदर्शन, राजकमल
 प्रकाशन, दिल्ली, 1972

- त्रिवेदी, क्षेमकरणदास गोपथ ब्राह्मण, सं.-प्रज्ञा देवी एवं मेधा
 देवी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
 - 1993
 द्विवेदी, कपिलदेव अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन हिन्दुस्तान
 एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1951
 नागेश वैयाकरण सिद्धांत मंजूषा, सम्पा. भागीरथ
 प्रसाद त्रिपाठी, सं., सं. वि., वाराणसी,
 1977
 पञ्जतजलि व्याकरण महाभाष्य ,प्रदीप - उद्योत
 सहित सम्पा. - गुरुप्रसाद शास्त्री,
 भाग-1,2,3,4,5,6, प्रतिभा प्रकाशन,
 दिल्ली - 2001
 पाणिनीय अष्टाध्यायीसूत्रपाठ, सम्पादक - पं.
 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट -
 2001
 धातुपाठ, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़,
 सोनीपत, हरियाणा ।
 लिङ्गानुशासन और शान्तनव फिटसूत्र,
 स.- विरजानन्द देवकरणिः, हरियाणा
 साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर,
 जिला-रोहतक, 1977
 उणादिकोष, सम्पा.-सत्यव्रत शास्त्री,
 सत्यसदन, चन्देरिया, चित्तौड़गढ़,
 राजस्थान 1997
 पाण्डेय, रामाज्ञा व्याकरणदर्शन प्रतिमा, सं.-रामगोविन्द
 शुक्ल, सं.सं. वि. विद्या., वाराणसी, 1979
 भर्तृहरि वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड, पं. सूर्य नारायण
 शुक्ल कृत भाव प्रदीप टीका सं.
 रामगोविन्द शुक्ल, काशी सं.सि. वाराणसी
 वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड, सं. शिवशङ्कर
 अवस्थी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
 1990
 मिश्र, केशव तर्कभाषा, सं. श्री निवासशास्त्री साहित्य
 भण्डार, मेरठ, 2011
 मीमांसक, युधिष्ठिर संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास ;भा.
 .1.2 वाराणसी, सम्वत्, 2019
 वर्मा, सत्यकाम व्याकरण की दार्शनिक भूमिका, मुन्शीराम
 मनोहरलाल, दिल्ली, 1971
 वामन, जयादित्य भाषातत्त्व और वाक्यपदीय मुन्शीराम
 मनोहरलाल, दिल्ली 1968
 विश्वबन्धु काशिका, न्यास पदमंजरी संहिता
 सम्पादक, डॉ. जयशङ्कर लाल त्रिपाठी
 एवं डॉ. सुधाकर मालवीय, तारा बुक
 एजेन्सी, वाराणसी, 1988
 शर्मा, रघुनाथ ऋग्वेद, विश्वेश्वरानन्द वैदिक - शोध
 संस्थान - होशियारपुर, 1965
 वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड, ;अम्बाकर्त्री टीका
 एवं स्वोपज्ञवृत्ति सहित. 1963
 वाक्यपदीय वाक्यकाण्ड, ;अम्बाकर्त्री
 टीका, स्वोपज्ञ, पुण्यराज, प्रकाश, सहित,
 1968
 वाक्यपदीय पदकाण्ड, अम्बाकर्त्री टीका,
 हेला. प्रकाश टीका, जाति, द्रव्य, सम्बन्ध
 समुद्देश पर , 1974
 वाक्यपदीय वृत्तिसमुद्देश, अम्बाकर्त्री
 टीका, हेला. प्रकाश टीका सहित, 1977
 वाक्यपदीय पदकाण्ड, अम्बाकर्त्री टीका,
 हेला. प्रकाश टीका, भूयोद्रव्य, गुण, दिक्,
 साधन, क्रिया, काल, पुरुष, संख्या,

- उपग्रह, लिङ्ग समुद्देशों पर, प्रकाशन
– सं. सं.वि. वाराणसी, 1979
वाक्यपदीय पाठभेदनिर्णय, स.स.वि.
वाराणसी, 1980
शास्त्री, रामशरण पाणिनीय व्याकरणशास्त्रे, वैशेषिक तत्त्व
मीमांसा – दिल्ली।

English Books

- Cardona George – Panini (A Survey of Research) Motilal
Banarsidas, Delhi, 1997
Iyer, K.A.S. – Bhartrhari (A Study of the Vakyapadiya
in the light of ancient (commentaries)
Deccan College, Poona, 1969
Iyer, K.A.S. – English Translation of the Vakyapadiya
of Bhartrhari with Vartti, Poona, 1969.
Shastri, Gourinath – The Philosophy of Word and Meaning,
Sanskrit College, Calcutta, 1951
Tola Fernand and – Bhartrhari (Language, Thought and
Reality)
Carmen Dragonetti (Proceedings of the International
Seminar), Delhi, December 12-14, 2003),
Edited by Mithilesh Chaturvedi) Moti Lal
Banarasidas, Delhi.